स्पर्धा में दुर्योधन तथा उसके भाइयों ने पाण्डवों की सती पत्नी द्रौपदी पर अधिकार प्राप्त कर लिया और फिर उसे राजाओं तथा राजकुमारों की सभा के मध्य निर्वस्त्र करने का प्रयास किया। कृष्ण के दिव्य हस्तक्षेप से उसकी रक्षा हो सकी। उस द्यूतक्रीड़ा में—छल के प्रयोग के कारण—पाण्डवों की हार हुई तथा उन्हें अपने राज्य से वंचित होना पड़ा और तेरह वर्ष तक वनवास के लिए जाना पड़ा।

वनवास से लौटकर पाण्डवों ने धर्मसम्मत विधि से दुर्योधन से अपना राज्य माँगा, किन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। क्षत्रियों के शास्त्रोनुमोदित कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए पाँचों पाण्डवों ने अन्त में अपना पूरा राज्य न माँगकर केवल पाँच गाँवों की माँग रखी, किन्तु दुर्योधन सुई की नोक भर भी भूमि देने के लिए सहमत नहीं हुआ।

अभी तक तो पाण्डव सहनशील बने रहे, लेकिन अब उनके लिए युद्ध करना अवश्यम्भावी हो गया।

विश्वभर के राजकुमारों में से कुछ धृतराष्ट्र के पुत्रों के पक्ष में थे, तो कुछ पाण्डवों के पक्ष में। उस समय कृष्ण स्वयं पाण्डुपुत्रों के संदेशवाहक बनकर शान्ति का सन्देश लेकर धृतराष्ट्र की राजसभा में गये। जब उनकी याचना अस्वीकृत हो गई, तो युद्ध निश्चित था।

अत्यन्त सच्चरित्र पाँचों पाण्डवों ने कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार कर लिया था, किन्तु धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्र उन्हें नहीं समझ पाये थे। तथापि कृष्ण ने विपक्षियों की इच्छानुसार ही युद्ध में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। ईश्वर के रूप में वे युद्ध नहीं करना चाहते थे, किन्तु जो भी उनकी सेना का उपयोग करना चाहे, कर सकता था। प्रतिबन्ध यह था कि एक ओर कृष्ण को सम्पूर्ण सेना होगी तथा दूसरी ओर वे स्वयं—एक परामर्शदाता तथा सहायक के रूप में उपस्थित रहेंगे। राजनीति में कुशल दुर्योधन ने आतुरता से कृष्ण की सेना झपट ली, जबकि पाण्डवों ने कृष्ण को उतनी ही आतुरता से ग्रहण किया।

इस प्रकार कृष्ण अर्जुन के सारथी बने और उन्होंने उस सुप्रसिद्ध धनुर्धर का रथ हाँकना स्वीकार किया। इस तरह हम उस बिन्दु तक पहुँच जाते हैं जहाँ से भगवद्गीता का शुभारम्भ होता है—दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं और धृतराष्ट्र अपने सचिव सञ्जय से पूछ रहा है कि उन सेनाओं ने क्या किया?

इस तरह सारी पृष्ठभूमि तैयार है। आवश्यकता है केवल इस अनुवाद तथा भाष्य के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी की।

भगवद्गीता के अंग्रेजी अनुवादकों में यह सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे अपनी विचारधारा तथा दर्शन को स्थान देने के लिए कृष्ण नामक व्यक्ति को ताक पर रख देते हैं। वे महाभारत के इतिहास को असंगत पौराणिक कथा मानते हैं तथा कृष्ण को किसी अज्ञात प्रतिभाशाली व्यक्ति के विचारों को पद्य रूप में प्रस्तुत करने का निमित्त बनाते हैं अथवा श्रेष्ठतम परिस्थितियों में कृष्ण एक गौण ऐतिहासिक पुरुष बना दिये जाते हैं। किन्तु साक्षात्